Journal of Advances and Scholarly Researches in Allied Education

Vol. IV, Issue VIII, October-2012, ISSN 2230-7540

REVIEW ARTICLE

शारीरिक वृद्धि एवं विकास

www.ignited.in

Journal of Advances and Scholarly Researches in Allied Education
Vol. IV, Issue VIII, October-2012, ISSN 2230-7540

शारीरिक वद्वि एवं विकास

Suresh Kumar Uikey [1] Raju Khanade[2] Adhir Kumar Ghodeshwar[3]

[1]Research Scholar CMJ University Shillong, Meghalaya

[2]Research Scholar CMJ University Shillong, Meghalaya

[3]Physical Training Instructor, Govt. HSS Garhi (Balaghat) (MP)

''षारीरिक षिक्षा विद्या का वह भाग है जो व्यक्ति के संपूर्ण व्यक्तित्व का विकास एवं प्रषिक्षण

शारीरिक गतिविधियों के द्वारा करे।'' –ए.आर. वेमैन

भूमिका

शारीरिक षिक्षा के तहत मनुष्य में शारीरिक,मानसिक तथा भावनात्मक विकास एवं वृद्वि लाने के लिए मानव शरीर के वृद्वि व विकास का ज्ञान होना आवष्यक है। साधरणतया वृद्वि का तात्पर्य जहां शारीरिक अंगों की वृद्वि से लगाया जाता है (जैसे आकार, लम्बाई तथा वनज में वृद्वि) वहीं विकास से हमारा आषय मनुष्य के शारीरिक गुणों एवं योग्यताओं से होता है। लेकिन मनुष्य की इन मानवोचित प्रवृत्ति को योजनाबद्व ढंग से समझने की आवष्यकता होती है तभी हम मनुष्य की शारीरिक वृद्वि एवं विकास का मूल्यांकन कर सकते हैं। शारीरिक षिक्षा हमारे लिए इस विद्या को समझने में एक महत्वपूर्ण कड़ी का काम करती है। इसी को दृष्टिगत रखते हुए प्रस्तुत अध्याय में इस पर विस्तार से चर्चा की गई है।

वृद्वि एवं विकास की अवधारणा

शारीरिक वृद्वि एवं विकास शारीरिक षिक्षा का प्रमुख उद्देष्य माना जाता है। यह केवल व्यायाम पर ही आधारित नही अपितु कई और कारणों परभी आधारित होता है,जिनका ज्ञान अत्यन्त आवष्यक है। प्राणी जगत में कुछ विषेष गुण दृष्टिगत होते हैं जिनमें से एक गुण वृद्वि की शक्ति है। जन्म क बाद ही सभी जीव धारियों की आकृति बढने लगती है। इनका शरीर कोषिकाओं का बना होता है। इन कोषिकाओं का जीवन सम्बल है,इनके भीतर का दृव्य जो कई प्रकार के रसायनिक पदार्थो, जिनमें कार्बोहाईड्रेट, प्रोटीन, वसा, लवण और जल आदि सम्मिलित हैं से बनता है। किसी भी जीव का जीवन एक ही कोषिका से प्रारम्भ होता है। ये कोषिका शीघ्र ही दो कोषिकाओं में बट जाती है और इस तरह इन कोषिकाओं का पुनःविभाजन होता रहता है। इस विभाजन से कोषिकाओं की संख्या अधिक हो जाती है। इनमें शनैः–षनैः श्रम का विभाजन होने लगता है और भिन्न–भिन्न स्थानों की कोषिकाएं पृथक–पृथक कार्य करने लगती है। एक ही आकार और प्रकार का कार्य करने वाली कोषिकाएं एक समूह का निर्माण करती है जो उत्तक (ज्पेनम) कहलाता है। इन कोषिकाओं के भेद के कारण ही भिन्न–भिन्न उत्तकों की उत्पत्ति होती है। एक अथवा एक से अधिक उत्तकों से इन्द्रियां बनती हैं और कई इन्द्रियां परस्पर मिलकर शरीर के एक तंत्र का निर्माण करती है जिससे शरीर के कार्य और रचना होती रहती है।

शरीर वृद्वि एवं विकास में अन्तर

शारीरिक वृद्वि;ळतवूजीद्ध से हमारा अभिप्राय कोषिकाओं की बढोतरी है। इस वृद्वि को हम प्रत्यक्ष रूप से देख सकते हैं। इसके द्वारा ही शरीर पनपता है। किन्तु जीव विज्ञान की दृष्टि से विकास कोषिकाओं के आकार में परिवर्तन से शरीर में विभिनन अवयवों की कार्य क्षमता बढती है। उदाहरणतः हम देखते हैं कि शक्ति की वृद्वि के लिए हमें मांसपेषियों की संख्या में बढोतरी की आवष्यकता नही अपितु इनके नाप व कार्य कुषलता में सुधार लाना आवष्यक है। मानव शरीर में पहले कोषिकाओं की वृद्वि होती है। तत्पष्चात उनका विकास होता है। इस तरह वृद्वि और विकास एक दूसरे पर आश्रित रहते है। परन्तु वृद्वि और विकास एक सीमा तक ही सम्भव होता है, जिसे हम परिपक्वता कहते हैं।

शारीरिक वृद्वि और विकास क्रम

वास्तव में शारीरिक वृद्वि और विकास क्रम को विभिन्न अवस्थाओं में बांटने की कोई विभाजन रेखा नही होती क्योंकि वृद्वि एवं विकास निरन्तर होता रहता है,परन्तु सुविधा हेतु मानव की शारीरिक वृद्वि और विकासक्रम को निम्न भागों में विभाजित कर सकते हैं–

1. बाल्यावस्था 0 से 12 वर्ष तक
2. किषोरावस्था 13 से 19 वर्ष तक
3. युवावस्था 20 से 50 वर्ष तक
4. वृद्वावस्था 50 से मृत्युपर्यन्त

इन चारों अवस्थाओं की निजि विषेषताएं हैं,जिनका उल्लेख करना अनावष्यक होगा । केवल निम्नलिखित तथ्य ही दृष्टव्य है–

(क) शारीरिक वृद्वि और विकास को प्रोत्साहित करने वाले कार्यक्रमों को उत्साहित करने के लिए किसी विषेष प्रकार के प्रयत्न की आवष्यकता नही पड़ती है। छात्र स्वयं ही इस प्रकार

www.ignited.in

के कार्यक्रम में रूचि लेते हैं और उसके फल का भी इन्हे कोई ज्ञान नही होता है।

(ख) शारीरिक वृद्वि और विकास बहुमुखी होता है जबकि हम इसे निम्न चार भागों में बॉटते हैं–

1. शारीरिक वृद्वि और विकास
2. मानसिक वृद्वि और विकास
3. सामाजिक वृद्वि और विकास
4. मनोवैज्ञानिक वृद्वि और विकास

(ग) विभिन्न अवस्थाओं के आरम्भ होने तथा अन्त समय में परिवर्तन हो सकता है पर सभी मानवों का जीवन क्रम ऐसा ही होता है।

(घ) शरीर के विभिन्न अवयवों की वृद्वि और विकास एक साथ और एक जैसा नहीं होता । कुछ अवयव पहले और कुछ बाद में तथा कुछ एक साथ विकसित होते हैं ।

(ड) समुचित अनुभवों द्वारा मानव की शारीरिक वृद्वि और विकास की दिषा निर्धारित की जा सकती है ।

इन सभी धारणाओं के आधार पर हम षिक्षा के कार्यक्रम की रूपरेखा दे सकते हैं,ताकि बालकों का पूर्ण रूप से विकास हो सके।

शारीरिक वृद्वि और विकास के आधार

विष्व में असंख्य मानव हैं किन्तु एक–दूसरे से कोई नही मिलता। इसका कारण है सभी की वृद्वि और विकास में अन्तर । जीव विज्ञान के विषेषज्ञों ने शारीरिक वृद्वि और विकास के निम्नलिखित आधार माने हैं। इनकी गहरी छाप हमारी वृद्वि और विकास पर अंकित है।

1. वंष और वातावरण
2. व्यक्तिगत स्वास्थ्य
3. संतुलित आहार
4. उचित व्यायाम
5. चिन्ता व तनाव से मुक्ति

(1) वंश तथा वातावरण का प्रभाव

प्रायः यह देखा गया है कि बालकों का स्वास्थ्य एवं शारीरिक ढांचा उनके माता–पिता तथा पूर्वजों पर ही जाता है। इनके अलावा स्वभाव व अधिकांष गुण भी उन्ही पर आधरित हैं। यहां तक कि उनका कद, आंखों व त्वचा का रंग, गंजापन और मोटापा का कारण भी वे ही होते हैं। मधुमेह, तपेदिक और दमा जैसी कष्टदायक बीमारियां भी उनके पूर्वजों की ही देन है। ये रोग एक पीढी से दूसरी पीढी में स्वयं ही पहुंच जाते है। इतना ही नही उनकी मानसिक व सामाजिक विषेषताएं भी एक सीमा तक पैतृक प्रभाव से प्रभावित रहती हैं।

इस प्रकार के गुण तथा प्रभाव एक विचित्र प्राकृतिक ढंग से माता–पिता की प्रजनन कोषिकाओं में पाए जाने वाले 24 जोड़ी क्रोमोसोम और इनमें स्थित जीन्स द्वारा सन्तान तक पहुंचते हैं। पैतृक प्रभाव का अनुमान लगाना कोई सरल कार्य नहीं, क्योंकि इस विषय पर हमारा ज्ञान अधूरा है। विषेषज्ञों का कथन है कि बालक के गुणों का 50 प्रतिषत आधार माता–पिता पर निर्भर करता है। षेष में से 25 प्रतिषत प्रभाव दादा–दादी व नाना – नानी का पड़ता है और शेष प्रभाव अन्य पूर्वजों का पड़ता जाता है। पर यह कहना कठिन जाता है कि अमुक गुण किस पूर्वज से प्राप्त हुआ है। फलतः एक ही परिवार में पलने वाले बहन–भाई के स्वभाव में अन्तर होता है।

इन पैतृक आधारों पर विष्वास रखने वाले विषेषज्ञों का कथन है कि हमारी शारीरिक वृद्वि और विकास की सीमा तथा दिषा का निर्णय गर्भ के समय ही हो जाता है। ऐसा कहां तक सम्भव हो पाता है, कहा नहीं जा सकता किन्तु यह सत्य है कि हमारे आकार व स्वास्थ्य का मूलाधार हमारे वंष पर निर्भर करता है।

इस वंष प्रभाव के अतिरिक्त हमारी वृद्वि व विकास पर वातावरण की भी गहरी छाप पड़ती है। जिस प्रकार एक बीज बिना उपजाऊ भूमि, खाद, जल, वायु और सूर्य के प्रकाष के बढकर एक वृक्ष का रूप धारण नही कर सकता उसी तरह बालकों के पूर्ण विकास और वृद्वि हेतु एक अच्छे स्वच्छ वातावरण का होना बहुत आवष्यक होता है। वातावरण के अन्तर्गत वास्तव में पैतृक प्रभावों को छोड़कर वे सभी प्रभाव आ जाते हैं जो इनमें परिवर्तन लाने में सहायक होते हैं। हमारा घर, आस– पड़ोस, साथी, विद्यालय, अध्यापक और सारा समाज हमारी वृद्वि और विकास पर प्रभाव डालते हैं। यहां तक कि हमारे परिवार की आर्थिक स्थिति,विचारधारा और कार्य करने की विधि का हमारे विकास पर गहरा प्रभाव प्रड़ता है।

वातावरण के प्रभाव के फलस्वरूप गंदी बस्तियों मे रहने वाले बालक बहुधा रोगों का षिकार हो जाते हैं। खेल क्षेत्रों की कमी के कारण बालकों की शारीरिक वृद्वि और विकास पर कुप्रभाव पड़ता है तथा दुर्जनों की संगति से बालक बुरी आदतों के चंगुल में फंस जाते हैं। उदाहरणतः रामू को ही ले लीजिए जिसे बचपन में भेड़िया उठाकर ले गया था। उसके परिवार में पलकर उसने किस प्रकार भेडियों जैसा व्यवहार सीख लिया। इन्ही कारणों को देखते हुए इस निष्कर्ष पर पहुंचा जाता है कि बालकों का अच्छे वातावरण में ही लालन–पालन करना चाहिए ताकि उनके शारीरिक विकास में किसी प्रकार की बाधा न पड़े ।

(2) व्यक्तिगत स्वास्थ्य तथा स्वास्थ्य नियमों का पालन

व्यक्तिगत स्वास्थ्य,वृद्वि और विकास के स्तर का सम्पूर्ण समाज पर प्रभव पड़ता है,क्योंकि व्यक्ति समाज की एक इकाई है। स्वस्थ्य व्यक्ति स्वयं के लिए अपने परिवार के लिए और समाज के लिए एक सहायक होता है और अस्वस्थ्य व्यक्ति एक बोझ। व्यक्ति के निजी स्वास्थ्य में सुधार से ही समाज एवं राष्ट् को स्वस्थ्य बनाने की कल्पना की जा सकती है।

हमारा स्वास्थ्य वृद्वि और विकास एक–दूसरे पर आश्रित है। एक–दूसरे के बिना ये अपूर्ण हैं,अधूरे हैं। अतः इनके पारस्परिक संयोग का हमारे जीवन में विषेष महत्व है। स्वस्थ्य जीवनयापन करने के लिए यह आवष्यक है कि हमारा सम्पूर्ण और सर्वांगीण विकास हो तथा हमारे शरीर के सभी अवयव ठीक प्रकार से कार्य करते रहें । इस उद्देष्य की प्राप्ति हेतु निम्न तत्वों पर दृष्टिगत करना होगा–

(क) शरीर की रचना तथा कार्य विधि का ज्ञान– इस प्रकार के ज्ञान से हम शारीरिक क्रियाओं को भलीभांति समझने लगते हैं। फलतः कई रोगों तथा अप्रिय घटनाओं से अपनी सुरक्षा कर सकते हैं। यह ज्ञान हमारे कान, नाक, नेत्र, मुख, कंठ, त्वचा और केषों की रक्षा से हमारी सहायता कर सकता है। शारीरिक वृद्वि और विकास के प्रयोग व अप्रयोग के सिद्वान्तों का पालन कर हम देह के संतुलित विकास को बढावा दे सकते हैं।

(ख) विभिन्न रोगों सम्बन्धी ज्ञान–विभिन्न प्रकार के रोगों का ज्ञान व उनके निदान से हम न केवल अपने स्वास्थ्य की सुरक्षा अपितु अपने सम्पर्क में आने वालों को भी उन रोगों से बचा सकते हैं। इससे कई प्रकार के छूतछात के रोगों का प्रसार रूक सकता है। ऐसे रोगों की रोक के लिए दवाई लेना व टीके लगवाना हमारा कर्त्तव्य हो जाता है । व्यक्ति का स्वास्थ्य उसकी अपनी जिम्मेदारी पर भी निर्भर करता है। यह विचार कर इस दिषा में प्रषासन द्वारा किए गए उपयों में सहयोग देना चाहिए।

(ग) व्यायाम सम्बन्धी नियम– विभिन्न प्रकार के व्यायामों द्वारा हमारा शरीर सुन्दर,लचीला एवं फुर्तीला बन जाता है और उसकी कार्यक्षमता बढ़ जाती है। इससे हमारे विभिन्न संस्थानो में सुधार हो जाता है । इस प्रकार निरन्तर उचित व्यायाम करते रहना सुन्दर व स्वस्थ काया का सोपान है जिस पर चढ़कर उसकी वृद्वि एवं विकास समुचित विधि से हो जाता है। व्यायाम, नियमों का पालन करते हुए आयु,व्यवसाय तथा स्वास्थ्य स्तर के अनुसार होना चाहिए।

(घ) संतुलित आहार– पूर्ण वृद्वि एवं विकास के लिए संतुलित आहार का सेवन अनिवार्य है। बाल्यावस्था और किषोरावस्था में संतुलित आहार का विषेष महत्व होता है,क्योंकि इस स्तर पर वृद्वि और विकास की गति कुछ तीव्र होती है तथा आने वाले कल की नींव पड़ती है। असंतुलित आहार वृद्वि एवं विकास में बाधा डालता है और शरीर में कुछ स्थायी विकारों की संभावना बढ़ाता है। अतः हमारा आहार संतुलित,षुद्व और कीटाणु रहित होना चाहिए। जहॉ तक सम्भव हो सके हरी सब्जियॉ, पके फल और पौष्टिक आहार का सेवन करना चाहिए।

(ड) उचित विश्राम तथा निद्रा–यह भी हमारी शारीरिक वृद्वि एवं विकास प्रक्रिया में अत्यन्त आवष्यक है। व्यायाम अथवा कार्य करने में जो शक्ति व्यय होती है,उसकी पुनः प्राप्ति व शरीर को कार्य हेतु तैयार करने के लिए उचित विश्राम तथा निद्रा की आवष्यकता होती है। इससे हमारी मॉसपेषियॉ और विभिन्न संस्थानों के कार्यो के फलस्वरूप उत्पन्न हानिकारक पदार्थ शीघ्र ही बाहर निकल जाते हैं और ऊतकों की मरम्मत हो जाती है। उचित विश्राम तथा निद्रा के न मिलने से भी हमारे शरीर में कई प्रकार के विकार उत्पन्न हो सकते है। निद्रा से पूर्ण विश्राम मिलता है। एक साधारण व्यक्ति को 7 से 8 घण्टे सोने की आवष्यकता पड़ती है। चार वर्ष से कम अवस्था वाले बच्चों को 16 घण्टे, 4 से 12 वर्ष की अवस्था वाले बालकों के लिए 12 घण्टे, और 12 से 16 वर्ष के किषोरों को 10 घण्टे सोना चाहिए। निद्रा का स्थान शांत, स्वच्छ और हवादार होना चाहिए। मुख ढककर सोना हानिकारक है। अतः इसकी आदत भूल कर भी नही डालनी चाहिए।

(च) स्वच्छ वातावरण प्रभाव– यह भी हमारी शारीरिक वृद्वि एवं विकास में सहायक होता है। खुले एवं स्वच्छ वातावरण में सैर तथा व्यायाम करना स्वास्थ्य के लिए लाभदायक है। दूषित वातावरण से जहॉ तक सम्भव हो सके दूर ही रहना चाहिए ताकि हमारे स्वास्थ्य पर उसका बुरा प्रभाव न पड़ सके।

(छ) नशीली दवाओं से बचाव– ऐसी दवाओं के प्रयोग से हमारा शरीर किसी न किसी रोग का षिकार हो सकता है और उसके विकास में कोई स्थायी विघ्न बाधा पड़ सकती है। कठोर कार्य अथवा व्यायाम करने से पूर्व किसी प्रकार की नशीली वस्तु का सेवन खतरे से खाली नही होता है।

(ज) स्वास्थ्य नियमों का दैनिक दिनचर्या में पालन– इसके लिए हमारा स्वभाव बन जाना चाहिए और इसकी स्पष्ट झलक हमारी दिनचर्या में मिलनी चाहिए। इसी में हमारा और समाज का हित निहित है।

(3) संतुलित आहार

मानव शरीर की तुलना एक रेल के इंजन से की जा सकती है। उसमें शक्ति उत्पन्न करने के लिए कोयले तथा जल की आवष्यकता पड़ती है। उसी प्रकार हमारा शरीर यह शक्ति संतुलित आहार से प्राप्त करता है । आहार के जलने से शरीर में ऊर्जा तथा ऊष्मा पैदा होती है। इसके कारण ही जगत के जीव–जन्तुओं में शारीरिक वृद्वि एवं विकास होता है। विभिन्न रोगों से सुरक्षा और टूटे–फूटे ऊतकों की मरम्मत होती है। हर जीव–जन्तु का आहार पृथक–पृथक प्रकार का होता है। इसी कारण आहार की कोई विशेष परिभाषा देना बहुत कठिन है। फिर भी आहार ऐसी वस्तु को कहते है जिसे ग्रहण करके हम पचा सकें और शरीर के किसी प्रकार के कार्य करने में सहायक बना सकें । आहार हमारे जीवन का आधार है और इसके बिना जीवित रहना सम्भव नही है।

प्रकृति में अनेक प्रकार के आहार मिलते हैं जिनके गुण व शक्ति पृथक–पृथक होती है,किन्तु मानव शरीर की आवष्यकता के सारे पोषक पदार्थ किसी एक खाद्य पदार्थ में नही मिलती । इसी कारण हमें दैनिक आहार में कई प्रकार के पदार्थो की आवष्यकता पड़ती है।

आहार के प्रकार–रासायनिक तत्वों के आधार पर आहार को निम्नलिखित मुख्य वर्गों में विभाजित किया जा सकता है–

(1) कार्बोहाइड्रेटस–;ंतइवीलकतंजमेद्ध इनमें हमें ऊष्मा तथा ऊर्जा मिलती है। जैसा कि नाम से ही पता चल जाता है कि ये पदार्थ कार्बन,हाइड्रोजन और ऑक्सीजन के यौगिक होते हैं। कार्बोहाइड्रेट (कार्बोज) में हाइड्रोजन और ऑक्सीजन का अनुपात जल की तरह 2:1 का होता है और ये मुख्य तीन प्रकार के होते हैं–

(क) शर्करा ;नहंतद्ध

(ख) स्टार्च ;जंतबीद्ध

(ग) सेल्युलोज ;ब्मससनसवेमद्ध

(क) शर्करा– यह गन्ने, खजूर, चुकन्दर और अन्य मीठे फलों में मिलती है तथा जल में

घुलनषील है।

(ख) **स्टार्च**– यह आलू, चावल और गेहूं आदि में बहुतायात में पायी जाती है। जल में
नही घुलती है।

(ग) **सेल्युलोज– यह** फलों और सब्जी से प्राप्त होता है। जल में नही घुलता है।

हमारी पाचन क्रिया प्रणाली इन्हे ग्लूकोज में परिवर्तित करके शरीर में खपा लेती है।

(2) प्रोटीन ;च्तवजमपदद्ध. यह हमारी शारीरिक वृद्वि तथा टूटे–फूटे ऊतकों की मरम्मत में काम आती है। फलतः यह हमारे आहार का मुख्य अंग है। इसमें हाइड्रोजन और ऑक्सीजन के अलावा नाइट्रोजन और कार्बन पाये जाते है। कुछ में गन्धक व फॉस्फोरस भी पाये जाते हैं। प्रोटीन जन्तुओं के मॉस,दूध,अण्डा,मछली से प्राप्त होती है। इसके अलावा चना, मटर, मसूर, उड़द और सेम आदि वनस्पतियॉ से भी यह प्राप्त होती है।

(3) वसा – वसा से हमें कार्बोहाड्रेट की अपेक्षा ऊर्जा तथा ऊष्मा अधिक प्राप्त होती है। इसी कारण श्रमिकों और ठंडे प्रदेष में रहने वालों के आहार में वसा की मात्रा अधिक रहनी चाहिए। वसा प्राप्ति भी वनस्पतियों जन्तुओं से होती है। जन्तुओं से वसा दूध,घी,मक्खन,मछली के तेल आदि से और वनस्पति द्वारा मूंगफली तिल, सरसों, नारियल आदि के तेल बादाम, अखरोट और काजू से प्राप्त होती है।

(4) खनिज लवण – ये भी हमारी शारीरिक वृद्वि एवं विकास के लिए आवष्यक है,किन्तु इनकी मात्रा हमारे शरीर में अधिक नही होती । वैसे तो शरीर में कैल्षियम, फॉस्फोरस, लोहा, मैगनीषियम, पोटेषियम, आयोडीन, लवण आदि की आवष्यकता रहती है,किन्तु इनमें से कैल्षियम, लोहे और फॉस्फोरस हड्डी और दांतों की बनावट तथा मजबूती पर प्रभाव डालते हैं तथा लोहा रक्त के लाल कणों में स्थित हीमोग्लोबिन के बनाने में सहायक होता है। दूध, अण्डे, मॉस, मछली, दाल आदि में कैल्षियम तथा फॉस्फोरस पाए जाते हैं और सेब, केला, पालक, टमाटर आदि में लोहा पाया जाता है।

(5) विटामिन – इनका भी हमारे जीवन में विषेष महत्व है इनमें भी हमारा शरीर स्वस्थ रहता है, किन्तु शरीर की वृद्वि और विकास में ये कोई सीधा प्रभाव नही डालते है। ये कई प्रकार के होते हैंः

(क) विटामिन 'ए' इसकी शरीर में कमी से शारीरिक वृद्वि में रूकावट और रात्रि में नजर में कमजोरी आ जाती है। यह त्वचा को स्वस्थ रखने तथा घावों को भरने में सहायक होता है। यह घी, मक्खन, अण्डे, मछली का तेल, गाजर, मूली, और कई हरी सब्जियों तथा फलों में पाया जाता है।

(ख) विटामिन 'बी' इस श्रेणी में दस विटामिन आते है यह हृदय स्नायु संस्थान, पाचन क्रिया तथा शारीरिक संरक्षा के लिए लाभदायक होते है। इसकी कमी से बेरी–बेरी रोग हो जाता है। यह बिना छिले अनाज,दाल,खमीर आदि में पाया जाता है।

(ग) विटामिन 'सी' इसकी कमी से दॉत और मसूढ़े कमजोर पड़ जाते है, स्कर्वी रोग हो जाता हैं यह नीबू, सन्तरा, मालटा, मौसम्मी और कुछ हरी सब्जियों में पाया जाता है।

(घ) विटामिन 'डी' – यह विषेषतः अस्थियों की वृद्वि और शक्ति बढ़ाने में सहायक होता है। इसकी सहायता से शरीर में कैल्षियम तथा फॉस्फोरस पायें जाते है। इसकी कमी से अस्थियों का सूखा रोग हो जाता है। यह हमारे शरीर पर सूर्य की किरणों से स्वयं ही पैदा हो जाता है। यह दूध,अण्डा और मछली के तेल और मूँगफली में भी पाया जाता है।

(ज) विटामिन 'इ' – यह प्रजनन क्रिया में विषेष रूप से सहायक होता है। इसकी प्राप्ति हरी सब्जियों आदि से हो जाती है।

(4) जल ;जमतद्ध – यह हमारा जीवन है। यह हमारी पाचन क्रिया तथा शरीर के कई अन्य कार्यो के लिए बहुत ही उपयोगी है। यह रासायनिक क्रियाओं तथा मल – मूत्र निष्कासन में सहायता प्रदान करता है। यह भोज्य पदार्थो के क्षेत्र में नही आता है।

(5) सन्तुलित आहार – जिस आहार में सभी आवष्यक तत्व उचित मात्रा में विद्यमान हो वह संतुलित आहार कहलाता है। ऐसे आहार के सेवन से शरीर की वृद्वि एवं विकास तथा रोगों से सुरक्षा हो जाती है। आहार की मात्रा भी हर व्यक्ति की एक सी नही हो सकती है, क्यों कि यह अवस्था लिंग और व्यवसाय पर निर्भर करती है। आहार की मात्रा का सही अनुमान लगाने के लिए हमें ऊर्जा तथा ऊष्मा के माप के सहारा लेना पड़ता है। इस नाप की ईकाई कैलोरी कहलाती है। एक कैलोरी का अर्थ है उतनी ऊष्मा जिससे एक किलोग्राम जल का तापमान एक दर्जा सेल्सियस से बढ़ाया जा सके। शक्ति आहार के जलने से प्राप्त होती है आहार के सभी पदार्थो की ऊष्मा शक्ति के नाप से ही हम अनुमान लगा सकते है। कि हमारे आहार में आवष्कतानुसार कौन – कौन से पदार्थ कितनी मात्रा में होनी चाहिये इसके लिए नीचे दी गई तालिका महत्वपूर्ण है

www.ignited.in

आहरीय पदार्थ	कैलोरी मात्रा – प्रति औस में
मक्खन	200
पनीर	100
चीनी	100
मॉस	100
जैम	80
डबलरोटी	65
आलू	20
दूध	20

पूर्ण स्वास्थता एवं शारीरिक शक्ति को बनाए रखने के लिए हमें आहार की पर्याप्त मात्रा ग्रहण करनी चाहिए। इसके द्वारा हमारे शरीर की कम से कम ऊर्जा व ऊष्मा की पूर्ती होती रहती है। एक सामान्य व्यक्ति को अनुमानतः 3000 कैलोरी की आवष्यकता पड़ती है। अन्य कार्य करने वाले व्यक्तियों को कितनी कैलोरी आवष्यक है,इसके लिए निम्न तालिका देखिए–

अवस्थ	कैलोरी की संख्या
24 घंटे लेटे हुए व्यक्ति को	1,700
कठोर श्रम करने वाले व्यक्ति या एथलीट को	3,500 से 6,000 तक
अत्यन्त कठोर कार्य करने वाले को	8,000 तक

इससे स्पष्ट है कि हमारे संतुलित आहार में आवष्यक तत्व ही नहीं अपितु उसमें समुचित ऊष्मा शक्ति देने वाले पदार्थ भी होने चाहिए।

हमारा आहार पर्याप्त मात्रा में हो किन्तु उसे पचाने में कठिनाई हो तो वह संतुलित आहार नही कहला सकता है। अतः आहार स्वादिष्ट,सुगमता से पचाने वाला होना चाहिए। कार्बोहाइड्रेट को वसा की अपेक्षा पचाना सरल होता है। इसीलिए आहार में कार्बोहाइड्रेट की मात्रा अधिक और वसा की कम रखी जाती है जबकि एक ग्राम कार्बोहाइड्रेड के जलने से हमें 4 कैलोरी की और एक ग्राम वसा के जलने से 9 कैलोरी ऊर्जा की प्राप्ति होती है। वसा को जलाने के लिए कार्बोहाइड्रेट की अपेक्षा ज्यादा ऑक्सीजन की आवष्यकता पड़ती है। अतः उपयोग के समय पहले कार्बोहाइड्रेट की खपत होती है और उसके बाद वसा की ।

इन तथ्यों के आधार पर यह सुझाया गया है कि साधारण व्यक्ति के आहार में कार्बोहाइड्रेट, वसा और प्रोटीन का अनुपात 4:1:1 का होना चाहिए तथा उसमें सभी आवष्यक खनिज लवण व विटामिन होने चाहिए। बालकों और किषोरों के आहार का विषेष ध्यान रखना चाहिए। इनके आहार में प्रोटीन,कैल्षियम,फॉस्फोरस और लोहा आदि खनिज लवणों की मात्रा अधिक होनी चाहिए।

संतुलित आहार न करने से हानियॉः– कभी–कभी ऐसा भी होता है कि हम अज्ञानतावष अथवा आर्थिक कठिनाइयों के कारण संतुलित आहार से वंचित रह जाते हैं । अज्ञानता के कारण कुछ तत्वों का अधिक और कुछ का कम प्रयोग करने लगते हैं। इस प्रकार का प्रयोग उनका स्वभाव बन जाता है। इससे कुछ अपाच्य और स्वादिष्ट पदार्थों का प्रयोग अधिक और आवष्यक तत्वों का सेवन कम करने लगते हैं। इस तरह के अपूर्ण पोषण से शारीरिक वृद्वि और विकास में रूकावट आ जाती है और शरीर रोगों का घर बन जाता है–

ऐसी स्थिति में निम्नलिखित लक्षण दिखाई देने लगते है–

(1) शरीर का भार कम होने लगता है।

(2) थोड़ा कार्य करने से ही थकावट महसूस होने लगती है।

(3) स्वभाव चिड़चिड़ा हो जाता है।

(4) मॉसपेषियॉ ढीली पड़ जाती है।

(5) कुछ रोग हावी होने लगते है।

(6) शरीर फूलने लग जाता है।

ऐसी स्थिति में अपने आहार की ओर विषेष ध्यान देना चाहिये। स्वच्छ,स्वादिष्ट और संतुलित आहार लेने का प्रयास करना चाहिए। इसके लिए यह आवष्यक नही है कि हम बहुमूल्य आहारीय पदार्थो का सेवन करे। सस्ते आहारीय पदार्थो में से भी चयन करके संतुलित एवं पौष्टिक आहार ग्रहण कर सकते है।

(4) उचित माध्यम

वैसे तो व्यायाम का मानव जीवन में विषेष महत्व है। शैषवावस्था, किषोरावस्था और युवावस्था में उचित व्यायाम शारीरिक वृद्वि एवं विकास में सहायता प्रदान करते है युवावस्था के बाद व्यायाम शरीर को स्वस्थ रखने में मदद करता है । माता, पिता, षिक्षक, अधिकारियों, समाजसेवियों और सरकार का यह कर्तव्य हो जाता है कि हर व्यक्ति को यथायोग्य व्यायाम कराने के साधन एवं सुविधाएँ जुटाएँ।

व्यायाम के लाभ इस प्रकार है –

(1) मॉसपेषियों के आकार तथा क्षमता में सुधार।

(2) अस्थियों की वृद्वि और विकास।

(3) रक्त प्रवाह तथा श्वास क्रिया – प्रणाली में सुधार।

(4) विसर्जन संस्थान में सुधार।

(5) माफसपेषियों में आपसी तालमेल बढ़ना।

(6) स्नायु संस्थान सुधार के कारण मानसिक स्थिरता आना।

(7) विभिन्न संस्थानों के आपसी सहयोग में सुधार।

(8) रोगो से बचाव।

(9) शरीर में लोच व स्फूर्ति का बना रहना।

व्यायाम नियमित रूप से करना चाहिए। इसे चाहे शारीरिक वृद्वि एवं विकास के लिए करें अथवा अपनी क्षमता बढ़ाकर किसी प्रतियोगिता की तैयारी के लिए अथवा किसी प्रकार के लिए रोग सके बचाव के लिए। यदि इसमें नियमितता का ध्यान न रखा जाए तो लाभ के स्थान पर हानि भी हो सकती है। व्यायाम के लिए निम्नलिखित सिद्वांतों को ध्यान में रखना चाहिए–

(1) व्यायाम खुली हवा में करना चाहिए।

(2) व्यायाम की विधि व्यक्ति की आयु, लिंग तथा व्यवसाय के अनुकूल होनी चाहिए।

(3) षरीर के संतुलित विकास के लिए हर अवयव का व्यायाम होना चाहिए।

(4) व्यायाम का बोझ समय बढाकर तीव्रता बढाकर अथवा कठोरता बढाकर धीरे–धीरे बढाना चाहिए।

(5) अभ्यास के बिना किसी भी प्रकार का कठोर व्यायाम नही करना चाहिए।

(6) कठोर व्यायाम करने से पूर्व देह को गर्मा लेना चाहिए।

(7) व्यायाम भुलकर भी झटके के साथ नही करना चाहिए।

(8) व्यायाम क्षमतानुसार ही करना चाहिए और थकान से पूर्व ही उसे छोड़ देना चाहिए।

(9) व्यायाम के बाद उचित समय तक विश्राम करना चाहिए।

(10) व्यायाम आवष्यक आराम के साथ–साथ नित्य करना चाहिए।

(11) आहार ग्रहण करने के बाद 2–3 घण्टे तक कठोर व्यायाम नही करना चाहिए।

(5) चिन्ता एवं तनाव से मुक्ति

चिन्ता एवं तनाव हमारी शारीरिक वृद्वि एवं विकास को विषेष रूप से प्रभावित करता है। जिसका अनुभाग हम इस कहावत से लगा सकते हैं कि चिन्ता चिता समान है। चिन्ता से ग्रस्त होना एक प्रकार का मानसिक अवगुण है। इसके कारण मस्तिष्क तनाव की स्थिति में रहता है जिसका कुप्रभाव देह के सभी अवयवों पर पड़ता है। इस प्रकार के तनाव से शरीर के विभिन्न अवयवों की कार्यक्षमता में कमी तथा किसी–न–किसी तरह की रूकावट आ जाती है। फलतःचिन्ता करने वाले बालक पतले–दुबले चिड़चिडे और रोगग्रस्त हो जाते हैं। इसके विपरीत चिन्ता एवं तनाव से मुक्त बालक हर स्थिति में हॅसमुख व ह्रष्ट–पुष्ट रहता है। चिन्ता और उससे उत्पन्न तनाव मानव का एक प्रकार से स्वभाव बन जाता है,जिसकी नींव शैषवकाल से पड़ जाती है।

REFFERENCE

1. Research Refference & Training Division Sports Sociology of H.G. Publication New Delhi.

2. Theberge, N. (1989)A Feminist Analysis Sociology of Sports Journal

3. Brophy, J. Teacher behaviour and its effects.Journal of education psychology 71